P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भीष्म साहनी के लेखन में कुन्तो का समाज

मंजुला शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
टी.डी.बी. कॉलेज,
रानीगंज, भारत

सारांश

मानव जीवन अपने विशालतम परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रकार के अनुभव आपसी रिश्ते, समाजिक संघर्ष, विसंगतियाँ, अतंर्विरोध आादि को समाए रहता है। परिवर्तनशील सृष्टि में जिस प्रकार प्रतिमान टूटते और बनते हैं उसी प्रकार मानव जीवन की मान्यताएँ भी युग के साथ नवनिर्मित होती हैं। स्त्री पुरूष का संबन्ध, प्रेम का सम्पर्क भी कुछ इसी प्रकार का है जो संवेदना के धरातल पर परिपुष्ट होती है। और समाजिक विकास की प्रकिया में अपना योगदान देती है। रचनाकार मानव समाज में निहित जिजीविषा शक्ति और मूल्य चेतना को उद्दीप्त और सक्रिय बनाता है। वह समाज की जड़ता को दूर कर उसे मानवीय आकांक्षाओं के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है। समाज के विभिन्न वर्गों, परिवारिक, स्थितियों, बदलती परंपराओं आधुनिक मानसिकताओं और नये जीवन दृष्टियों का प्रभावपूर्ण समावेश वह अपनी रचना में करता है।

हिंदी साहित्य में उपन्यास लेखन के आरम्भ से ही सामाजिक उपन्यासों की रचना हुई। भीष्म साहनी की रचना का यथार्थवाद एक ओर तो सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को प्रभावशाली रूप प्रदान करता है,तो दूसरी ओर चेतना का संस्कार देता है। इनका यथार्थवाद प्रेमचंद की परंपरा का होते हुए भी उनसे कहीं आगे है।

सन् 1993 में प्रकाशित 'कुंतो 'भीष्म साहनी का एक सामाजिक उपन्यास है। भारतीय स्वतंत्रता के पहले की स्थितियों पर लिखा गया यह उपन्यास तत्कालीन समाज की आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनैतिक आादि विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण करता है। उपन्यास के केन्द्र में कथानायिका कुंतो है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने अपने लेखन का ताना बाना बुना है। परिवार, रिश्ते, प्रेम, जीवन, कर्तव्य ये सभी व्यक्ति के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते है, यह उपन्यास इसकी व्यंजना करता है। साथ ही देशव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन और साम्प्रदायिक संधर्ष भी विवेचित है।

मुख्य शब्द : रिश्ते, मान्यताए, मूल्य, चेतना, परिवर्तन, समाज ।

प्रस्तावना

भीष्म साहनी के उपन्यासों में 'कुन्तो' सामाजिक परिप्रेक्ष्य में गहन मानवीय संवेदना लेकर उपस्थित हुई है। लेखक का प्रगतिशील दृष्टिकोण जीवन की सच्चाइयों को ठोस रूप में बांधना चाहता है। सुरेश बाबर के अनुसार, 'प्रगतिशील विचारधारा, पारदर्शी दृष्टि, सूक्ष्म विश्लेषण एवं निरीक्षण शक्ति के साथ–साथ गहरी संवेदनशीलता भीष्म जी के विशेष लेखकीय गुण हैं। इसी कारण पाठक और लेखक के बीच आवश्यक भावात्मक तादात्म्य यहॉ सहज सम्भव हो सकता है। पाठक को लगता है, कि यह तो हमारे ही जीवन का, परिवार का, परिवेश का अथवा हमारी समस्या का चित्रण है। भीष्म जी की रचनाएं हमें जीवित रहने का एहसास कराती हैं और हमें समाज से जोड़ती हैं।[1] पात्र विशेष से संचालित 'कुन्तो' उपन्यास बदलती हुई जिंदगी का विश्लेषण करती है। मनुष्य के आपसी सम्बन्ध, रिश्ते, नाते, जीवन के विभिन्न परिदृश्य इसकी रचनात्मकता को गढते हैं। भीष्म साहनी के शब्दों में 'यह उपन्यास किसी कालखंड का ऐतिहासिक दस्तावेज न होकर मानवीय सम्बन्धों, संवेदनाओं की करवट लेते परिवेश और मानव नियति के बदलते रंगों की ही कहानी कहता है''।[2] जयदेव और कुन्तो तथा सुषमा और गिरीश उपन्यास के केन्द्र में है। इनके आपसी सम्बन्ध और इच्छाएं उपन्यास की सामाजिकता को परिपुष्ट करती हैं। प्रोफेसर साहब 'अपनी सुनहरी मध्यम मार्ग' के अंर्तगत जीवन को चलाना चाहते हैं। तत्कालीन देशव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित पात्र के दृष्टिकोण को लेखक अपनी पैनी आलोचना शक्ति से उधाड़ते चले जाते हैं। साथ ही

स्त्रियों का संसार भी भीष्म साहनी से अछूता नहीं रहता। उपन्यास के विभिन्न स्त्री–पात्र अपने अनुसार उस कालखंड की स्त्री जनित चेतना का उद्‌गार भी करती है। यही नहीं यह आज भी अपने प्रांसगिकता की माँग करती है।

प्रोफेसर साहब अपने प्रिय छात्र जयदेव के साथ अपनी छोटी बहन कुन्तो का विवाह करवाना चाहते हैं, 'तुम्हारी अपनी अपेक्षाएँ क्या है, जयदेव? मेरी छोटी बहन अभी हाईस्कूल में पढ़ती है। इस वर्ष दसवीं की परीक्षा में बैठेगी ''तुमने उसे देखा तो होगा, हमारे घर में ?''[3] जबकि जयदेव का सहज आकर्षण उसकी मौसेरी बहन सुषमा से होता है। ''मेरी मौसी की बेटी मुझे अच्छी लगती है'' और तो मैं किसी को नहीं जानता''।[4] संयुक्त परिवार में रहनेवाले मध्यम मार्ग के अनुयायी प्रोफेसरसाहब इस आकर्षण को तोड़ डालते हैं ''अगर उसका छुटकारा इस आकर्षण से कराना है तो उसके मन में सुषमा की रूपछवि को भी मंद करना होगा''। ..... क्या मैं प्रेम के एक तरूण, कोमल अंकुर को मसल डालने की कोशिश नहीं करता रहा हूँ? एक निःश्छल प्रेम की भ्रूण –हत्या तो नहीं करता रहा हूँ''।[5]

प्रोफेसर साहब जयदेव को यह अच्छी तरह से समझा देते हैं, कि ''हिंदू परिवारों में फुफेरी अथवा मौसेरी बहिन के साथ विवाह नहीं हो सकता''।[6] और जयदेव कुन्तो का विवाह हो जाता है। शादी के बाद जयदेव कुन्तो में गुँथता है और कुन्तो का पूर्ण समर्पण जयदेव के प्रति रहता है। भीष्म साहनी नवदम्पत्ति की भावनाएँ दिखाते हैं ''सेक्स से बड़ी शांति मिलती है,''वह भाई से कह रहा था। ''अंदर की सारी छटपटाहट शांत हो जाती है। मुझे मालूम नहीं था इससे इतना सुकून मिलता है।..... ..... इसमें उन्माद है, पर इस उन्माद का अनुभव तुम्हारी आत्मा करती है, यह एक आध्यात्मिक अनुभव हैं''।[7] किन्तु शीघ्र ही जयदेव पुनः सुषमा की ओर चला जाता है। वह सुषमा को भुला नहीं पाता है और कभी कुन्तो तो कभी सुषमा की ओर खिंचता है। अब कुन्तो और जयदेव के संबन्ध टूटने, बिखरने लगते हैं। डा. भारत कुचेकर के अनुसार, '' अर्थात् अपनी बहन की खुशी के लिए वह जयदेव के सच्चे प्यार का गला घोंट देता है और उसी की वजह से बाद में कुंतो का जीवन दुःखपूर्ण हो जाता है''। [8]

प्रोफेसरसाहब की ही सलाह से जयदेव सुषमा का विवाह गिरीश से करवाता है। परन्तु कुछ ही दिनों में गिरीश सुषमा से अलग होना चाहता है वह अपनी विरक्ति को बार–बार पुर्जो में लिखकर बयान करता है और सुषमा निरंतर आहत होकर रिश्ते को समाप्त कर शांतिनिकेतन की राह लेती है।

सुषमा माँ को पत्र लिखती है, ''अगर मुझे जूतों में पड़ा वह पुर्जा नहीं मिलता तो, माँ मैं यह निर्णय नहीं ले पाती जो आज ले रही हूँ''।[9] जीवन के थपेड़ों से आहत सुषमा अब सृजनात्मक हो उठती है, ''मेरे पास कुछ पैसे हैं, तुम चिंता न करना। वहाँ मैं वहीं पहुंचकर स्वयं पत्र लिखूँगी जिससक तुम्हें विश्वास हो जाएगा कि मैने शांतिनिकेतन का ही रूख किया है। न तो मैने कहीं डूब मरने का, न किसी के संग भाग जाने का, न साध्वी बनने का। संगीत सीखने की लालसा लेकर जा रही हूँ।[10]

प्रोफेसर साहब के संयुक्त परिवार में भाभो तेरह वर्षों से पति के इंतजार में परित्यक्तता का जीवन बिताती हैं। तीसरे भाई धनराज की पत्नी थुलथुल सात वर्षों से पति की राह देखती हैं। धनराज डॉक्टर बनकर तो वापस आता है पर साथ ही लाता है डार्की डार्लिंग की तस्वीर, याद और नीली चिट्‌ठियाँ। धनराज और थुलथुल का सम्बन्ध नहीं टिक पाता है क्योंकि धनराज अब अपने अनुरूप स्त्री चाहता है। और यह तो हमारे समाज की विशेषता है कि पुरूष कैसा भी हो स्त्री की सुदंरता अनिवार्य है। धनराज थुलथुल को अभिसार के गुलाबी पलों में खदेड़कर कमरे से बाहर कर देता है। इन्हीं क्षणों में भीष्म साहनी थुलथुल के आत्मसम्मान को चित्रित करते हैं ''धनराज ने उसकी गरिमा पर, स्त्री के नाते उसके आत्मसम्मान पर प्रहार किया था। ''मेरे पेट में तुम्हारा बच्चा है, जी। मुझे भी मार दो और उसे भी मार दो और लौट जाओ अपनी उस रखैल के पास। मैं तुम्हें कहाँ रोकती हूँ?'' ''संयुक्त परिवार के विशाल भवन में प्रोफेसर साहब का लट्‌ठ ठकोरता है और थुलथुल का क्रंदन सिसकियों में बदल जाता है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में, ''थुलथुल न अपने लिए जीती है, न अपनों को पहचानती है स्वयं को अलक्षित करने का प्रशिक्षण अन्ततः उसके भरे–पूरे व्यक्तित्व को पति एवं परिवार की नजरों मे अलक्षित कर देता है जिस कारण अपना नाम खोकर वह उपहासास्पद विश्लेषण 'थुलथुल' के रूप में जानी जाती है और गरिमा खोकर व्यंग्योक्ति में कि 'मिट्‌टी का लोंदा है। इसके शरीर में सूई चुभोकर निकाल लो, 'फिर वैसा का वैसा'।[12] धनराज को डार्की डार्लिंग से अलग करने के उद्‌देश्य से प्रोफेसर साहब उसे कोकिला से जोड़ते हैं। ''जब से डार्की डार्लिंग से नाता टूटा था कोकिला के प्रति धन्ने का आकर्षण बेलगाम होता जा रहा था। धन्ना बना ही ऐसी मिट्‌टी का था''।[13] थुलथुल के जल मरने से उसके दाम्पत्य जीवन का अंत होता है। ''और आस्थाओं की विडम्बना, जब थुलथुल ने प्राण त्यागे तो उसका सिर सचमुच धन्ने के चरणों पर था और धन्ना सचमुच उससे लिपट–लिपटकर रो रहा था''।[14] संयुक्त परिवार का बड़ा भाई सोलह वर्षो बाद विदेश में मची हलचल से लौटकर पत्नी को विरक्त सी मुस्कान देता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में प्रोफेसर साहब के संयुक्त परिवार की गरिमा बनी रहती है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में, 'लेखक ने पलंग के प्रतीक का रचनात्मक उपयोग करते हुए जिस प्रकार पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अहंनिष्ठ क्रूर चरित्र को उधाड़ा है, वह कमजोर स्त्री पात्रों की भीड़ जुटाने के वैचारिक पूर्वग्रह के बावजूद उनके स्त्री विमर्श को शक्ति और चमक देता है।[15]

उपन्यास में दूसरी ओर लोग आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठा रहे थे। डा. कृष्णा पटेल के अनुसार ,''भीष्म जी पूरे कथानक में टूटते, बनते, बिगड़ते अबूज मानवीय रिश्तों के बीच में यह आजादी का रंग भरकर बताना चाहते हैं कि जहाँ मानवीय रिश्तों की पडताल जारी है, वही भारत की धरती में देश की आजादी के लिए कई दीवानें अपना घर बार छोडकर क्रान्ति पथ पर एक नये रंग की तलाश में खुद को मिटा रहे है''।[16]

जयदेव का भाई सहदेव स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ा है। उसे राजनैतिक कैदी हीरालाल की बूढ़ी माँ और पत्नी की मदद के लिए भेजा जाता है। हीरालाल मनादी करके अपनी जीविका कमाता है। वह आजादी के उन दीवानों में से हैं जिनके लिए देशसेवा ही सर्वोपरि है।''इस आदमी का तो निर्वाह ही मनादी पर है भइया। जलसों की मनादी करता है या फिर थोड़ी कमाई के लिए शहर के किसी दुकानदार के लिए मनादी कर दी, हर मनादी पर इसे अठन्नी, रूपया, दो रूपये, ऐसा ही कुछ मिल जाता है। पर फिर भी भइया, इसका चेहरा हर वक्त खिला रहता है सारा वक्त हंसता और दूसरों को हंसाता रहता है।[17]

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बंटकर भारतवर्ष आजाद होता है और साथ ही शुरूआत होती है अमानवीयता के तांडव की। लोग एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाते हैं। भारत और पाकिस्तान की खोज में लोग शरणार्थी शिविर में सिमट जाते हैं। रमाशंकर द्विवेदी के शब्दों में, संभवतः यह दर्द कितने करीब से पंजाब की धरती के लोगों को सहना पड़ा है, शायद अन्य को नहीं। अगर भीष्म साहनी इस वेदना को 'झरोखे' से लेकर 'कुन्तो तक नहीं भूल पा रहे हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए।[18] पत्नी और माँ को खो चुका हीरालाल सहदेव से अपनी व्यथा बांटता है ''दुखी आदमी की जगह दुखीजनों के बीच ही होती है भइया। सब एक दूसरे का दुख बांटते हैं। ..... बांटेंगे नहीं तो जाएगे कहाँ? क्या सारा वक्त छाती पीटते रहेंगे?''[19]

लेखक सहदेव के माध्यम से विभाजन के दौरान हुई घटनाओं का वर्णन करते हैं। बलवाइयों के डर से लोग अपनी ही बहू–बेटियों का सिर कलम कर डालते हैं। ''उसी खड्ड में बड़ी चट्टान के पीछे हमने एक–एक का सर कलम कर दिया। ओ सरदार जी, हम नरकों की आग में जलेंगे। हमारा कोई ठिकाना नहीं होगा''[20] जयदेव का परिवार भी लाहौर छोड़ चुका होता है। पिताजी के घर से निकलते ही ढेला मारकर घर का ताला तोड़ दिया जाता है। नौकरों के काफिले को काट दिया जाता है। ''चालीस के लगभग नौकर रहे होंगे एक एक पड़ाव पैदल चलते जा रहे थे। पांचवे पड़ाव पर पहुँचे ही थे–उनके गांव तक पहुँचने का बस एक ही और पड़ाव रह गया था – कि किन्हीं लोगों ने धावा बोल दिया और चालीसों के चालीसों नौकर काट डाले गए''।[21] सहदेव का पूरा परिवार लाहौर से भागकर बम्बई जयदेव के पास पहुँचता है। जहाँ लोग नई तरह से जी ने का प्रयास करते हैं। यह मध्यवर्गीय परिवार बदलते समय और जीवन मूल्यों से तारतम्य बैठाता हुआ आगे बढ़ता है। पात्र अपने–अपने तरीके से परिवर्तन को आत्मसात् करते हुए संघर्ष पथ पर बढ़ते हैं।

सहदेव और कुन्तो का वैवाहिक जीवन कुन्तों की मृत्यु के साथ टूट चुका हैं। कुन्तो जीवन के अंतिम सांस तक जयदेव के मन को जीतने की आप्राण चेष्टा करती है। भीष्म साहनी प्रोफेसर साहब के 'गोल्डेन मीन' की व्याख्या करते हैं। ''गोल्डेन मीन में कुछ अंश नये का हो , कुछ पुराने का, इतना ही काफी नहीं है। इसका सही अर्थ निकालना हो तो, थोड़ा सा स्वार्थ का, थोड़ा सा आदर्शवादिता का, थोड़ा सा व्यवहार पटुता का सब थोड़ा थोड़ा मिला दो तो 'गोल्डन मीन' का फलसफा बनता है। प्रोफेसर साहब का यह फलनफा कुन्तो के जीवन को तबाह कर डालता है क्योंकि समझौता से बाद के जीवन में दिशा नहीं होती है। किसी एक के द्वारा किए गए समझौता का वैवाहिक जीवन उसके लिए सुखद नहीं होता है। डा0 कृष्णा पटेल के शब्दों में ''और एक दिन जयदेव की बांहों में ही उसने अपना दम तोड़ दिया। या यों कहें कि कुन्तो ने अपने आप को खतम कर दिया। प्रोफसर साहब को पहली बार अपने आदर्श, परामर्श और प्रयास व्यर्थ लगे थे''।[23] जयदेव की माँ पुत्र की खुशी के लिए प्राचीन संस्कारों को छोड़कर सुषमा से उसका विवाह करवाना चाहती है। ''सुषमा भी बहुत ठोकरें खा चुकी है। तेरा घर भी सूना हो गया है। छोट–छोटे बच्चों के साथ कैसे जिंदगी गुजार पाएगा कुंतो अपने छोटे–छोटे बच्चे तेरे हवाले कर गई है। तू जो फैसला करे, मुझे मंजूर है''।[24] डा0 कृष्णा पटेल के अनुसार, ''लेखक का उदेद्श्य इन रिश्तों की पूर्ति करना नही है बल्कि आधुनिकता के प्रभाव में व्यक्ति संम्बन्धों में आए बदलाव को चित्रित करना है, और इसमें उनको सफलता भी मिली है।[25] और कुन्तो के पूरे कथानक में रिश्तों घटनाओं द्वारा करवटें लेती जिंदगी दिशा विशेष की ओर चली जाती है। और यह सबकुछ देशव्यापी लहरों और आंदोलनों की पृष्ठभूमि में होता है। यह ऐसा समय था जबकि हमारा देश इतिहास के निर्णायक मोंड़ पर खड़ा था। इस प्रकार भीष्म साहनी कुन्तो उपन्यास में एक बार फिर सृजनात्मक हो उठे हैं। इस उपन्यास के रिश्तों की प्रासंगिकता अपने साथ नया आयाम जोड़ती है।

निष्कर्ष

भीष्म साहनी का कुन्तो उपन्यास मानवीय सम्बन्धों की कहानी कहती है। प्रकृति के परिवर्तनशील व्यवहार में कालखंड के बदलाव के साथ जीवन मूल्यों का नवनिर्मित होना अपनी विशेषता लेकर उपस्थित होता है। कुन्तो के विभिन्न पात्र और घटनाएं एक संग्राम की तरह आए हैं। जयदेव, कुन्तो, निरास सुषमा कथानक के मूल में है। लेखक ने इन पात्रों के जीवन और और उनसे जुड़े अन्य परिवारिक रिश्तों तथा घटनाओं द्वारा उपन्यास को गढ़ा है। यहां एक ओर समाज है तो दूसरी ओर राजनीति है। जहाँ सामाजिक धरातल पर सम्बन्धों की जांच –पड़ताल जीने की जिजीविषा, नए मूल्यों का निर्माण चल रहा था। वहीं राजनीतिक फलक पर देशव्यापी स्वतंत्रता आन्दोलन जोरों पर था। आजादी के दीवानें परिवार और पत्नी को त्याग कर देश के लिए समर्पित थे। उनके जहन में एक मात्र देश ही मुख्य रहा। आजादी मिलती है, परन्तु साम्प्रदायिकता के साथ, और यह साम्प्रदायिकता अपने साथ लाती है मार काट की लीला । मानव सम्बन्धों का अंत यहाँ खून–खराबा से होता है। ऐसे ही परिवेश के साथ उपन्यास के विभिन्न पात्र जीवन पथ पर आगे बढ़ते है। लेखक ने उपन्यास के अंत में यह दिखाया है कि जयदेव की माँ कुन्तो के चले जानें के बाद सुषमा के साथ उसका विवाह करवाना चाहती है। पुरानी पीढ़ी का नयी पीढ़ी के इस मूल्य बोध को समझना अपने आप में क्रांतिकारी है। इस उपन्यास में लेखक ने स्त्री पात्रों के द्वारा टूटने–बिखरने और फिर संगठित होकर संघर्ष पथ

पर डटे रहने की व्यथा दिखाई है। जहां कुन्तो जयदेव के प्रेम को पाने के लिए मृत्यु को प्राप्त करती है वही सुषमा जीवन के थपेड़ों से आहत होकर जीने का संकल्प लेती है। भीष्म साहनी का यह उपन्यास बदलते मापदंडों की कथा कहती है। जो सामाजिक धरातल पर आज भी प्रासंनिक है।

पाद टिप्पणी

1. *बाबर डा0 सुरेश', भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन, 'अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर 1997 पृ0 32*
2. *साहनी भीष्म, 'कुन्तो', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 आवरण*
3. *साहनी भीष्म, 'कुन्तो', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 17*
4. *वही पृ0 19*
5. *वही पृ0 23*
6. *वही पृ0 54*
7. *वही पृ0 121*
8. *कुचेकर डा. भारत 'भीष्म साहनी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 'विनय प्रकाशन, कानपुर 2004 पृ0 87*
9. *साहनी भीष्म 'कुन्तो' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 276*
10. *वही पृ0 277*
11. *वही पृ0 145*
12. *सं नामवर सिंह आलोचना त्रैमासिक अंक 17–18 राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली 2004 पृ0 213*
13. *साहनी भीष्म 'कुन्तो' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 227*
14. *वही पृ0 229–30*
15. *सं नामवर सिंह', आलोचना त्रैमासिक अंक 17–18 राजकमल प्रकाशन , नयी दिल्ली 2004 पृ0 218*
16. *साहनी भीष्म, 'कुन्तो', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 218*
17. *पटेल डॉ0 कृष्णाः कथाकार भीष्म साहनी, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर 2009, पृ0 77*
18. *द्विवेदी डा. रमाशंकर –'भीष्म साहनीः उपन्यास साहित्य 'वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 1998 पृ0 140*
19. *साहनी भीष्म 'कुन्तो' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 324*
20. *वही पृ0 326*
21. *वही पृ0 332*
22. *वही पृ0 187*
23. *पटेल डॉ0 कृष्णा : कथाकार भीष्म साहनी, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर 2009, पृ0 79*
24. *साहनी भीष्म 'कुन्तो' राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002 पृ0 332*
25. *पटेल डॉ0 कृष्णाः कथाकार भीष्म साहनी, चिन्तन प्रकाशन कानपुर 2009, पृ0 8*